गोस्वामी तुलसीदासजी की काव्यभाषा और उनका कौशल

प्रो. श्यामसुन्दर शुक्ल

यह प्रायः सर्वविदित तथ्य है कि काव्य का लक्ष्य मनुष्य के सभी मनोविकारों की अभिव्यक्ति के लिए आलम्बन तथा विषय चुनना और तदनुरूप भाषा के प्रयोग से उसको सार्थकता प्रदान करना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'यदि जगत् अव्यक्त सत्ता की अभिव्यक्ति है तो काव्य उस अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति है।' स्पष्ट है कि इस अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा ही हो सकती है। किसी भी कवि के कवि-कर्म पर विचार करने के साथ ही काव्यभाषा का प्रश्न आ खड़ा होता है। यह काव्यभाषा अपने आप में साधन भी है और साध्य भी। कवि इन दोनों के बीच की कड़ी है और विधाता भी।

भाषा के विचार से कविता वस्तुतः भाषा की ही एक रीति या शैली है। 'रमणीयार्थ प्रतिपादक' शब्दों की योजना कविता की आवश्यक शर्त है अथवा यह भी कह सकते हैं कि रमणीयता ही काव्य की उपलब्धि है। कर्णप्रियता और माधुर्य काव्यभाषा के विशेष गुण हैं। अतः कहा जा सकता है कि ऐसी भाषा लोक-व्यवहार में प्रचलित भाषा में 'जड़ने' और 'गढ़ने' की प्रक्रिया के योगदान से निष्पन्न या निर्मित होती है। गोस्वामी तुलसीदास की यह मान्यता भी विचारणीय है–

'भाषा भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सबकर हित होई।।' मानस बा. 13.5

तथा

'अरथ अमित अति आखर थोरे।' वही. अयो. 293.1

सब मिलाकर, कहा जा सकता है कि गोसाईंजी भाषा-प्रयोग के संबंध में उसकी मधुरता, मंजुलता और अलंकृत संघटना के पक्षधर हैं। अमूर्त वस्तुओं का विधान, विम्बात्मकता या भावचित्रात्मकता उनके काव्य की शोभा के विशेष कारक हैं। उनकी काव्यभाषा में अनायास आगत अलंकारों की कुछ अलग ही छटा है। गोसाईंजी का अनुभव-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, फलतः उनकी भावाभिव्यक्ति एवं भाषा की क्षेत्रव्यापकता का संतुलन उनके काव्यसंसार में सर्वत्र परिलक्षित होता है।

काव्यभाषा के साधक तत्त्वों में प्रतीक और विम्ब-विधान के साथ ही अलंकार, शब्दशक्ति, छंद, संगीत, चित्रात्मकता और मिथ आदि की गणना की जाती है। इनकी उपस्थिति से काव्य की रसात्मकता और अर्थव्याप्ति में यथेष्ट वृद्धि होती है। कविता की भाषा को उसकी लयबद्धता नया अर्थ प्रदान करती है। उससे मुख्यार्थ या सामान्यार्थ से भिन्न अर्थ-गर्भित बनाने में इन तत्त्वों का बहुत बड़ा योगदान होता है। काव्य में प्रयुक्त शब्द भले सामान्य सा हो परन्तु काव्यगत अन्य विशेषताओं के कारण वह भी विशिष्ट हो जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तित्व एवं कवित्व-निर्माण में सूकरक्षेत्र (पसका, जनपद-गोंडा) की अवधी संस्कृति, चित्रकूट की बुंदेली संस्कृति, काशी की काशिका के साथ ही श्रीरामभक्ति तथा काशी की निर्द्वंद्व गंगाजमुनी जीवनशैली का प्रत्यक्ष एवं प्रामाणिक प्रभाव परिलक्षित होता है। इसका प्रमाण यह है कि सूफी प्रेममार्गी कवियों की भाषा-पद्धति का अनुसरण करते हुए भी गोस्वामीजी ने अपनी मौलिक छाप विकसित कर ली है। उनकी भाषा में तत्सम प्रयोगों की प्रधानता, परिनिष्ठित अवधी और ब्रजभाषा का प्रयोग तथा कतिपय श्लोकों की रचना के माध्यम से उनके संस्कृतज्ञ होने का प्रमाण प्रेमाख्यानक कवियों की भाषा से उनकी भाषा का अलगाव सिद्ध करने के प्रमुख कारक-

बिन्दु हैं। अलंकारों, बिम्बों, प्रतीकों, मिथकों, मुहावरों और लोकोक्तियों के सटीक प्रयोग से उनकी भाषा में अद्वितीय रूप से प्रेषणीयता प्रकट हुई है।

लोकोक्तियों के प्रयोग में उन्हें जो निपुणता प्राप्त थी, वह अन्य कवियों में दुर्लभ है। इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

(क) 'साह ही को गोत, गोत है गुलाम को।' कवितावली, उत्तरकांड, छंद सं. 107

(ख) 'काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब' तथा 'लेने को एक न देने को दोऊ।' वही, 107

(ग) 'तुलसी बनी है राम, रावरे बनाये, न तु,
धोबी कैसो कूकर, न घर को न घाट को।' कवितावली, उत्तरकांड, छंद सं. 66

(घ) 'लही आँखि कब आँधरे, बाँझ पूत कब पाय।
कब कोढ़ी काया लही, जग बहराइच जाय।।' दोहावली, दोहा सं. 496

सैकड़ों ऐसी लोकोक्तियाँ उनके साहित्य में भरी पड़ी हैं।

तुलसी साहित्य में व्यंग्य और विरोधाभास–

जहाँ तक व्यंग्य और विरोधाभास से युक्त कथनों की सहायता से समाज की समझ और उसके व्यवहार की तीखी आलोचना करके उसे झकझोरने की बात है, *'रामचरितमानस'* के उत्तरकाण्ड में आये कलिकाल-वर्णन में उनके उदाहरण भरे पड़े हैं। इनके माध्यम से गोसाईंजी की खीझ और तिलमिलाहट स्पष्ट एवं निर्भीक रूप में व्यक्त हुई है। यह वस्तुतः समाज को जागृत करने का सशक्त उपक्रम है। वे समाज की नासमझी पर तरस खाकर सच्चाई को समझाने के लिए ही इस प्रकार की उक्तियों का आश्रय ग्रहण करते हैं–

(क) असुभ भेष-भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी, तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलजुग माहिं।। वही. उत्तर. 98

अथवा

(ख) जाके नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलि काला।। वही. 97.4

इसी प्रकार की शृंखलाबद्ध व्यंग्यात्मक उक्तियाँ तुलसी की कृतियों में उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार के व्यंग्य, उपहास, उपालम्भ और खीझ से पूर्ण अभिव्यक्तियों में व्यंजना, दृष्टान्त और उदाहरण जैसे अलंकारों के साथ प्रतीकों और बिंबों का भी योगदान है। अप्रस्तुत वस्तुओं की योजना द्वारा प्रस्तुत का स्पष्टीकरण निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

(क) तुलसी तृन जल कूल को, निरबल-निपट-निकाज।
कै राखै, कै संग चलै, बाँह गहे की लाज।। दोहावली, दोहा. सं. 544

(ख) तुलसी पावस के समै, धरी कोकिला मौन।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहैं कौन्? दोहावली, दोहा. सं. 544

(ग) बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत,
संचिबे को, सोई सुरतरु काटियतु हैं।
गारी देत नीच हरिचंद हू, दधीचि हू कौ,
अपने चना चबाय हाथ चाटियतु हैं।

आप महापातकी हँसत हरि-हर हू कौ,
आप हैं अभागी, भूरिभागी डाटियतु हैं।
कलि को कलुष मन, मलिन किये महत,
मसक की पाँखुरी, पयोधि पाटियतु हैं।। कवितावली, उत्तरकांड, छं. सं. ९९

ग्रंथभेद से काव्यभाषा-भेद

यद्यपि देश, काल और कथ्यभेद से काव्यभाषा-भेद एक स्वाभाविक रचना-प्रक्रिया है किन्तु डेढ़ दर्जन ग्रन्थों की काव्यभाषा में अलग-अलग स्पष्ट काव्यरूपों को अपनाकर किसी कवि ने सर्वोत्तम ढंग से उसका उपयुक्त निर्वाह किया हो यह एक अद्वितीय उदाहरण है। गोस्वामीजी ने इस भिन्नता को किस रचना में कैसे प्रस्तुत किया है, उसका सांकेतिक उल्लेख यहाँ अनुचित नहीं होगा। इसके विपरीत उनका अनुल्लेख ही अनौचित्य की सीमा में आयेगा।

जनभाषा का प्रयोग

गोस्वामी तुलसीदास ने जनभाषा को अपनी काव्य-रचनाओं का माध्यम जनोपयोगिता की दृष्टि से ही बनाया था। इस प्रकार की भाषा अपनाने में उन्हें थोड़ी हिचक और आशंका अवश्य हुई थी परन्तु किसी हीनता का भाव उनके मन में नहीं था। वस्तुतः मध्यकाल के सभी बड़े कवियों के मानस में इस बात की अनुभूति अवश्य थी कि लोग मुझे संस्कृतज्ञ और शिष्ट कवि न मानकर कहीं ग्राम्य या अल्पज्ञ कवि समझकर मेरी रचना का उपहास तो नहीं करेंगे? परन्तु फिर इस बात से संतोष कर लेते थे कि उनकी रचना का लक्ष्य ऊँचा है, भाव सर्वजनहितकारी है और उनकी कृति का संदेश महान् है। जो 'दुर्जन' होंगे वही अपने कुटिल स्वभाव के कारण उनकी निन्दा करेंगे परन्तु जो 'सज्जन' होंगे वे ऐसा नहीं करेंगे। उनकी यह सोच सर्वथा युक्तियुक्त सिद्ध हुई। उनकी ग्राम्य भाषा की ठेठ ग्राम्य शैली में रचित कृतियाँ भी आशातीत रूप से ग्राह्य हुईं।

गोस्वामी जी की जनभाषा और जनशैली में रचित *'रामलला नहछू'*, *'बरवै रामायण'*, *'पार्वती मंगल'*, *'जानकी मंगल'* और *'गीतावली'* को सबने उसी प्रकार अपनाया जैसे *'रामचरित मानस'*, *'विनय पत्रिका'*, *'कवितावली'* और *'हनुमान बाहुक'* आदि को सिर-माथे लिया। इनमें से *'रामलला नहछू'* विविध वैवाहिक आयोजनों में ग्रामीण स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले संस्कार गीतों का मार्गदर्शक है। इसकी रचना का उद्देश्य धार्मिक-सामाजिक उथल-पुथल के वातावरण में संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले विस्मृत होते गीतों की ओर पुनः ध्यानाकर्षण है। इसी प्रकार *'पार्वती मंगल'* में शिव-गिरिजा-परिणय के माध्यम से वैवाहिक गीतों की प्रस्तुति ही कवि को इष्ट रही है। इसका संदेश इस 164 गीतों की पुस्तक के अंत में इस प्रकार दिया गया है–

मृगनयनी बिधुबदनी रचेउ मनि मंजु मंगलहार सो।
उर धरहु जुवती जन बिलोकि तिलोक सोभासार सो।
कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइहैं।
तुलसी उमाशंकर-प्रसाद प्रमोद पद प्रिय पाइहैं।। पार्वती मंगल, छंद सं. 164

'जानकी मंगल' भी *'पार्वती मंगल'* की ही भाँति विवाह गीतों की विविध ग्राम्य शैलियों एवं लोक रागों में निबद्ध 216 छंदों का खंडकाव्य है। इसका भी उद्देश्य वही है जो 'पार्वती मंगल' का है। इसी प्रकार *'बरवै'* भी अवधी का एक विशेष छंद है, जिसमें ललित अलंकारों की सहायता से 69 छंदों में पूरा रामायण समाविष्ट है। इसमें लालित्य की प्रधानता है। गोसाईं जी की *'कृष्णगीतावली'* में जहाँ ब्रजभाषा का निखरा रूप मिलता है, वहीं लोकोक्तियों की भरमार है। इससे यह सिद्ध होता है कि गोसाईं जी का ब्रजभाषा-प्रयोग पर भी उतना ही अधिकार था जितना अवधी के शिष्ट

और ग्राम्य प्रयोग पर। इस मान्यता के प्रमाणस्वरूप मात्र एक ही उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। उलाहना देने वाली गोपियों के समक्ष माता यशोदा की डाँट खाने के बाद बालक कृष्ण तिलमिला उठते हैं और पीड़ापूर्ण एवं चातुर्य्ययुक्त युक्ति द्वारा यशोदाजी और उलाहना लेकर आई गोपियों, दोनों को ही पलट कर दोषी सिद्ध करते हैं–

"अबहिं उराहनौ दै गइ, बहुरौं फिरि आई।
सुनु मैया! तेरी सौं याकी टेव लरन की, *सँकुचि बेंचि खाई।*
या ब्रज में लरिका जु घने हैं, हौं हीं हूँ अन्यायी।
मुँह लाये, मूड़हिं चढ़ी, अंतहुँ अहिरिनि तू सूधौ करि–पाई।।" कृष्ण गीतावली (बालकांड)

इन पंक्तियों में बालक कृष्ण ने जहाँ उस अहीरिन को 'निर्लज्ज' और 'सिरचढ़ी' कहा, वहीं माता यशोदा को भी उलाहना दी कि उन्होंने उस गोपी को चिर चढ़ा रखा है और स्वयं बहुत सीधी–सादी हैं।

विनय पत्रिका–यह गोसाईं जी की काव्यकला का सर्वोच्च शिखर है। इसमें उनके दैन्य भाव, विश्वास, आत्मभर्त्सना, निर्वेद, हर्ष, ग्लानि, मोह, चिंता, विषाद, गर्व, दृढ़ता–प्रदर्शन, उपालंभ और एकान्तिक भक्ति की बड़ी ही विशद, प्रौढ़ और कलापूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। अतः तदनुसार भाषा का प्रयोग भी प्रसंगानुकूल तथा भावानुकूल अत्यन्त प्रौढ़ है।

गोस्वामी तुलसीदास के समक्ष तत्कालीन भाषा का स्वरूप बड़ा ही जटिल था। परन्तु उन्होंने जिस कौशल से अपनी रचनाओं में भाषा को उत्कर्ष दिया वह उनकी सारग्राहिणी मेधाशक्ति और विशाल व्यावहारिक ज्ञान का सूचक है। उनका शब्द–संगठन इतना प्रभावशाली एवं सटीक है कि वह किसी भी प्रसंग को सजीव एवं सार्थक बना देता है। उनकी काव्यभाषा में पद–पद पर उनके सामाजिक अनुभव तथा लोक संस्कृति के ज्ञान की छाया विद्यमान मिलती है। इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के समस्त भावों और व्यवहारों तक है। फलतः नई अर्थवत्ता, सटीक अलंकार–विधान, भाषा के सरल एवं परिमार्जित, दोनों रूपों का उत्कृष्ट प्रयोग, उक्ति वैचित्र्य, अन्योक्तियों का सुष्ठु प्रयोग, प्रसंगानुकूल शब्द–अर्थ का विधान, अर्थगांभीर्य, लालित्य, प्रसादात्मकता, अनेकरूपता और मर्यादित वाक्य–विधान आदि के क्षेत्र में तुलसीदास जी अद्वितीय हैं।

अब गोस्वामी जी की लोकविश्रुत एवं अमरकृति *'रामचरितमानस'* में प्रयुक्त काव्यभाषा–वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालना उचित प्रतीत होता है। यह *'रामचरितमानस'* एक साहित्यिक संरचना, धार्मिक आख्यान, दार्शनिक मीमांसा, राजनीतिक–सिद्धान्त–निरूपक कृति, सामाजिक आदर्शों का निदर्शक एवं मानव जीवन के आदर्श आचार–विचार का पथप्रदर्शक महाकाव्य है। मानवीयता, लोकधर्मिता, समन्वयवाद और प्रगतिशीलता के मध्य परम्परावादिता का *'मानस'* में सर्वोत्कृष्ट रूप प्रतिफलित है।

'मानस' के प्रत्येक शब्द का अपना स्वतन्त्र बिम्ब है और प्रत्येक वाक्य एक मंत्र के सदृश है। इसमें शब्दों की संरचना इस रूप में हुई है कि शब्द एक दूसरे को स्वतः संपुष्ट करते चलते हैं। फलतः उनमें एक विशेष प्रकार की अर्थवत्ता का समावेश हुआ है। गूढ़ दार्शनिक प्रसंगों एवं पारिभाषिक विषयों के विवेचन में उन्होंने तत्सम शब्दों से युक्त तथा पांडित्यपूर्ण वाक्य–विन्यास के द्वारा कथ्य का निरूपण किया है। गोसाईं जी संस्कृत भाषा की काव्य–रचना में पूर्णतः समर्थ थे परन्तु तब जनसमुदाय की प्रवृत्तियों, रीति–रिवाजों, उत्सवों और संस्कारों आदि का सम्यक् वर्णन भी सर्वजनग्राह्य न हो पाता। केवल 'बुधजन' ही उनके काव्य–रस का आस्वादन कर पाते जबकि ऐसे लोगों की संख्या भी कम ही होती।

संस्कृत के मूल शब्दों, अर्द्धतत्सम, तत्समाभास, विदेशी एवं देशज सभी कोटि के शब्दों का प्रयोग गोसाईं जी ने यथा प्रसंग बहुत ही सुष्ठु रूप में किया है। उनके *तत्सम शब्द* प्रयोग का एक उद्धरण यहाँ द्रष्टव्य है–

मैना सुनहु सत्य मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी।।
अजा अनादि शक्ति अविनासिनि। सदा शंभु अरधंग निवासिनि।।
जग संभव, पालन, लयकारिनि, निज इच्छा लीला बपु धारिनि।। मानस बा. 97, 2-4

इसी प्रकार *अलंकृत भाषा* की झलक निम्न पंक्तियों से स्पष्ट होती है। इनके माध्यम से कवि ने उपमा और दृष्टांत की छटा प्रस्तुत की है–

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं जिमि प्रिय दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहुँ मोहि राम।। वही. उत्तर., 130

अथवा

भरत महा महिमा जल रासी, मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी।
गा चह पार जतनु हियँ हेरा, पावत नाव न बोहित बेरा।। वही. अयो. 256, 2-3

अलंकृति-विहीन, चमत्कार-रहित परन्तु प्रसादगुणपूर्ण वाक्य-रचना में तुलसीदास को जो नैपुण्य प्राप्त है, वह भी अद्वितीय है। संजीवनी बूटी की खोज में गये मारुतिनन्दन पूरा पर्वत ही उखाड़कर ला रहे हैं–इस प्रसंग का वर्णन निम्न पंक्तियों में हुआ है, जो द्रष्टव्य है–

देखा सैल न औषधि चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा।।
गहि गिरि निसि महँ धावत भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ।। मानस, लं. 57

अथवा

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं स्रुति, पुरान, बुध, बेदा।।
अगुन, अरूप, अलख, अज जोई। भगत प्रेम बस प्रगट सो होई।। वही., बा., 115.1

इसी क्रम में गोसाईं जी की ओजपूर्ण भाषा की एक बानगी द्रष्टव्य है–

माँखे लखन कुटिल भइँ भौहें। रद-पुट फरकत बचन रिसौहैं।। वही., 251.8

अथवा

नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रणधीरा।। वही. लंका 65.2

तात्पर्य यह कि 'मानस' में सभी रसों, गुणों और वृत्तियों के साथ ही सभी प्रकार के अलंकारों के उदाहरण ढूँढे जा सकते हैं।

गोस्वामी जी ने अपने काव्य में जिन शब्दों का प्रयोग किया है, वे सभी उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त हैं जो परम्परापोषित एवं शास्त्रसम्मत हैं। चमत्कार या उक्तिवैचित्र्य के व्यामोह में वे नहीं पड़े हैं। पर्याय रूपों का भी यथास्थान जैसा प्रयोग उन्होंने किया है, उस स्थान पर किसी अन्य शब्दों का वैसा उपयोग श्रेष्ठ नहीं हो सकता था। उन्होंने तत्सम या लोकभाषा की शब्दावली को अपनी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति से जैसी आभा प्रदान की है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने अवधी के शब्दों के साथ अरबी-फारसी आदि के कतिपय शब्दों को भी बड़ी कुशलता के साथ प्रयुक्त किया है। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि काव्यभाषा और लोकभाषा के अन्तराल को मिटाकर अपनी सहजता और वंकिमता से उन्होंने उसे एक अद्‌भुत स्वरूप प्रदान किया है। ऐसा मात्र वे ही कर सकते थे। उदाहरण के रूप में उनकी निम्न पंक्तियाँ उद्धरणीय हैं–

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छवि-गृहँ दीप-शिखा जनु बरई।
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहि पटतरौं बिदेह कुमारी।। वही. बा., 229, 7-8

अतः स्पष्ट है कि तुलसी ने शब्दों का प्रयोग चाहे जिस रूप में किया हो, वे कुशल शब्द-पारखी और शब्द-शिल्पी हैं। वर्ण एवं अक्षरों के प्रति जो सजगता उनमें है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। औचित्य एवं विवेकशीलता का काव्यात्मक प्रयोग तुलसी के साहित्य में सर्वथा प्रशंसनीय है। उनका काव्य माधुर्य का शाश्वत उत्स है। उनके शब्दों में निहित नाद-सौन्दर्य अद्‌भुत है। साथ ही छन्दों का संगीत भी अनुपम है। तुलसी की भाषा में अवधी का प्रौढ़ एवं साहित्यिक रूप विद्यमान है। प्रसंग एवं भावानुसार उनकी भाषा के अनेक रूप हैं। बोलचाल की साधारण भाषा से लेकर अलंकृत तथा नाद-वैभव से संपन्न भाषा को उन्होंने बड़ी सहजता से प्रयुक्त किया है।

एक ही मूल शब्द को उन्होंने अनेक रूपों और अर्थों में प्रयुक्त किया है, यथा 'आना' शब्द के लिए प्रसंगानुसार उन्होंने 'आइ', 'आइअ', 'आई', 'आये', 'आव', 'आवइ', 'आवत', 'अइहै', 'अइहइँ', 'आवहि', 'आवा', 'आइहि', 'आउब' आदि। इसी प्रकार अकाज, अखयबटु (अक्षयवट), अपछरा (अप्सरा), उगिलत (उगलना), कदराई (कायरता), कोहबर (शादी की एक रस्म से जुड़ा कमरा), गाजे (गर्जन किया), घालइ (नष्ट करने की क्रिया), जनवासू (बारात ठहरने का स्थान), तलाई (छोटा तालाब), निबेरी (पूरा किया), नेग (विवाहादि शुभ अवसरों पर दी जाने वाली दक्षिणा), पटतर (समानता), पाइक (पैदल), मारवे (अप्रसन्नता व्यक्त की), रजायसु (राजाज्ञा), रिसोहैं (क्रोधित), लिलार (मस्तक), समधी (संबंधी), सारवोचारु (शारवोच्चार) और हरकहु (मना कीजिए) आदि हजारों तद्‌भव शब्दों का उन्होंने अति सुन्दर प्रयोग किया है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि तुलसी की भाषा सरल होने के साथ ही अति समृद्ध शब्द-संपदा से संपन्न है। अभिव्यक्ति चाहे जिस भाव या परिस्थिति से संबद्ध हो, उनके पास उपयुक्त एवं लयात्मक शब्दों की कोई कमी नहीं है। भावानुसार कहीं उन्होंने परिष्कृत भाषा-शैली अपनाई है तो कहीं ठेठ या बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। अभिव्यक्ति को उपयुक्ततम तथा मधुरतम बनाने के उद्देश्य से आवश्यकतानुसार उन्होंने शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है। फलतः उनकी काव्यभाषा में काव्य का वाक्य-विन्यास अलंकृति और बिम्बयोजना से मिलकर एक ही रूप धारण किये हुए दिखाई देता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि अपनी अभिव्यक्तिनिपुणता से उन्होंने काव्य की संप्रेषणीयता और अर्थवत्ता में चार चाँद लंगा दी है। इस कथन की पुष्टि में यहा कुछ पंक्तियाँ उद्‌धृत की जा रही हैं–

(क) कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। मानस, बा. 229.1

(ख) पुनि बंदउँ सारद, सुर-सरिता। वही. 14.1

(ग) जो जस करइ, सो तस फल चाखा। वही. अयो. 218.4

(घ) सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखरु थोरे।। वही. 293.2

(ङ) रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ।। वही. 232.8

तत्सम और तद्‌भव शब्दों के प्रयोग के साथ देशज शब्दों के प्रयोग की प्रचुरता भी तुलसी साहित्य में यथास्थान प्रयुक्त होकर काव्य-भाषा को संपन्नता प्रदान करती है। सामान्य जनता तक अपनी पहुँच के कारण और उन तक अपना संदेश प्रसारित करने की उत्कट इच्छा के कारण पंडितों की निन्दा को झेलकर भी उन्होंने अनेक प्रासंगिक देशज शब्दों को भी अपनाया। देशज शब्द जनभाषा के वे शब्द होते हैं जिनकी व्युत्पत्ति नहीं मिलती। इनमें से कुछेक शब्दों की सूची इस प्रकार है–

कहँरना (पीड़ा से आहें भरना), उपरना (गमछा या चादर, ऊर्ध्ववस्त्र), गाडर (एक घास विशेष, भेंड़ के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है), घमोई (काँटेदार पौधा), चंग (पतंग), ठौरी (स्थान), धंधक (आडंबरी), निहोरा

(विनय), नेहरुआ (एक रोग), बेसरि (खच्चर), भड़िहाई (चोरी), मकु (ताकि, बल्कि), लवाई (सद्यः प्रसूता गाय का बच्चा), लहकौरि (विवाह की एक रीति), लात (पैर), सहिदानी (चिह्न), सुआसिनि (सौभाग्यवती) और हरहाई (अधिक दौड़ने-भागने वाली गाय) आदि।

अन्त में गोस्वामी जी की काव्यभाषा की संपन्नता, मधुरता, प्रसंगानुकूल अर्थपरकता और रस निष्पत्ति में योगदान करने वाली शब्द-संपदा में विदेशी शब्दों के योगदान पर भी दृष्टिपात करना उचित होगा। गोस्वामी जी ने तत्सम, तद्भव, देशज और अन्य भारतीय भाषाओं के लोकप्रचलित शब्दों को अपनाने के साथ ही परिस्थितिजन्य उपयोगिता का अनुभव करते हुए अरबी-फारसी के अनेक शब्दों को ग्रहण किया है। इतना अवश्य है कि अपनी काव्य-भाषा में प्रयुक्त ऐसे शब्दों में से अधिकतर शब्दों को उन्होंने बोलचाल के प्रचलित साँचे में ढाल लिया है। कुछ ही शब्द ऐसे हैं जो अपने मूलरूप में ही प्रयुक्त हैं। ऐसे शब्दों का प्रयोग *'रामचरितमानस'* की अपेक्षा *'विनय पत्रिका'* में अधिक प्राप्त होता है। ऐसे कुछ शब्द नीचे दिये जा रहे हैं-

जहाज, मसखरी, लायक, साहिब, सराफ, अरगजा, कमान, गरीब, कुलह, कोतल, गुदारा, चौगाना, ताजी, नेवाजी, पिरोजा, बाजार, जमात, रुख, सहम (डर), बजार, हुनर और हरासूँ आदि।

यहाँ इस बात का भी उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है कि गोस्वामी जी ने पात्रों की सामाजिक स्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उनके द्वारा या उनके बीच हुए संवादों में प्रयुक्त भाषा में पर्याप्त विविधता प्रदर्शित की है। इनके ठेठ ग्रामीण नर-नारी जहाँ ग्राम्य अवधी का प्रयोग करते हैं, वहीं शिक्षित नर-नारी, ऋषिगण, उनकी पत्नियाँ और शासन से जुड़े लोग भाषा के परिष्कृत रूप को ही संवाद का माध्यम बनाते हैं। यह अन्तर *'कवितावली'* में सर्वाधिक दृष्टिगोचर होता है। *'रामचरितमानस'* के राम-वन-गमन प्रसंग में भी यह तथ्य उभरकर आता है। सूत्र रूप में कह सकते हैं कि अपने आदर्श भक्तशिरोमणि दशरथनन्दन भरतजी की भाषा के लिए गोस्वामी जी ने जिस उक्ति का प्रयोग किया है, वह स्वयं उनके लिए भी प्रासंगिक है-

सुगम, अगम, मृदु, मंजु, कठोरे।
अरथु अमित, अति आखरु थोरे।।
ज्यों मुखु मुकुर, मुकुरु निज पानी।
गहि न जाइ, अस अदभुत बानी।। मानस, अयो. 293, 3-4